'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' 'अमृतचन्द्राचार्य' कृत, १६ वीं गाथा। टीका, २२ वें पृष्ठ पर है। **'एतत्पदं अनुसरतां मुनीनां वृत्तिः अलौकिकी भवति।'** क्या कहते हैं? **'एतत्'** अर्थात् **इस रत्नत्रयरूप पदवी को प्राप्त हुए....** ऊपर कहा था, १५ वीं गाथा में कहा था कि सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या? कि आत्मा में कर्म के निमित्त से हुए पुण्य-पाप के विकल्प, विकार और कर्म के निमित्त से प्राप्त बाह्य की सामग्री—दोनों से रहित आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है। ये पुण्य-पाप के विकल्प—राग और बाह्य संयोग, यह कर्मजन्य उपाधि है। इनसे भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य भिन्न है। ऐसा आत्मा का अनुभव करना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वीतराग समरसीस्वरूप है आत्मा। उसे उसके विषम शुभ और अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति या काम, क्रोध शुभाशुभभाव, ये विषम भाव हैं, इनसे समभाव को भिन्न करके, विषमभाव से भिन्न स्वरूप है—ऐसे अन्तर में सन्मुख दृष्टि करके, आत्मा के अनुभव में प्रतीति करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह रत्नत्रय पदवी कही न, यह पहली सम्यग्दर्शन की पदवी है। **'एतत्'** शब्द पड़ा है न? **'एतत् पदम्'** यह रत्नत्रय की पदवी। इसके उपाय में लगे हुए जीव कैसे होते हैं—उनका इस १६ वीं गाथा में वर्णन है।

www.vitragvani.com

पहली पदवी यह कि वस्तुस्वरूप अत्यन्त निर्विकल्प अर्थात् राग के विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, आदि राग—इससे भिन्न चीज़ है। ऐसी अन्तर में—अन्तर्मुख में दृष्टि स्वभावसन्मुख की होना और पुण्य-पाप के राग से विमुख होकर स्वभाव की एकाग्रता की अनुभव में प्रतीति करना, इसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन—मोक्ष के उपाय की पहली पदवी सम्यग्दर्शन है। शान्तिभाई!

दूसरी पदवी—इन शुभ और अशुभराग के विकल्प से रहित, चैतन्य के ज्ञानस्वरूप स्वयं चिदानन्दस्वरूप है, उसका अन्तर्मुख में ज्ञेय करके उसका ज्ञान करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन के बाद की सम्यग्ज्ञान की दूसरी पदवी है। समझ में आया?

तीसरी (पदवी)—यह शुभ और अशुभ जो राग है, इससे हटकर / उदासीन होकर शुद्ध चैतन्यस्वरूप में स्थिर होना, वीतरागपर्यायरूप से परिणमित होना, इसका नाम तीसरी चारित्र की पदवी कही जाती है। कहो, समझ में आया? मांगीरामजी! यह तुमने कल पूछा था कि मुनिपने की विधि। वह गाथा आयी। ये तीन प्रकार की जो एकत्व पदवी—ऐसा है न? देखो! यह रत्नत्रयस्वरूप पदवी। पूरी तीनों एकसाथ ली है न यहाँ तो?

भगवान आत्मा अनन्त चैतन्य गुणधाम। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम।' ऐसी अन्तर में (प्रतीति होना)। विकल्प जो रागादि थे न? दया, दान... यह दोपहर में तो कहा जाता है कि मैं शुद्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प / राग... इसमें वह आ जाता है। आस्रव से भिन्न कहने पर, कर्मजनित पर्याय से भिन्न कहने पर मैं शुद्ध हूँ—ऐसा जो विकल्प, उससे भी रहित इसमें हो जाता है। समझ में आया? ऐसे चैतन्यस्वरूप का, निजस्वरूप के सन्मुख होकर, विकार से विमुख होकर अन्तर में भान करके प्रतीति करना—यह प्रथम अनन्त काल में नहीं हुई सम्यग्दर्शन की—पहली—यह मोक्षमार्ग के उपाय की पदवी है। शोभालालजी! और वह सम्यग्ज्ञान सहित होती है। वह ज्ञान किसका? कि जो स्वरूप शुद्ध है उसका। रागादि का नहीं। राग से लक्ष्य छोड़ा है और स्वरूप में अन्तर एकाग्र हुआ है, तब ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है—ऐसा जो स्वसंवेदनज्ञान आया, उसे यहाँ मोक्ष की पदवी का दूसरा अवयव—दूसरा भाग—ज्ञान कहा जाता है। उसके साथ तीसरी (पदवी)—पुण्य-पाप के कर्मजनित उपाधिभाव शुभ-अशुभ है, उनसे उदास होकर स्वरूप में चरना-

www.vitragvani.com

रमना-लीन होना, उसे यहाँ चारित्र (कहते हैं)। एतत् पदवी में तीसरा बोल चारित्र पदवी का, जो मोक्ष का उपाय तीन होकर एक है, (कहने में आता है)। तीन होकर एक उपाय है। समझ में आया?

एतत् पदवी—**इस रत्नत्रयरूप पदवी को प्राप्त हुए....** ऐसी दशा को जो प्राप्त हुए होते हैं। **महा मुनियों....** उन्हें महामुनि कहते हैं। तीन उपाय को एकसाथ कहना है, इसलिए पहले महामुनि लिये हैं। पश्चात् ये तीन न पाल सके, उसे गृहस्थाश्रम में स्वरूप की अन्तर अनुभव की दृष्टि और स्वरूप के ज्ञानपूर्वक देश (एकदेश) पाप का त्याग करे तो उसका देशविरति नाम का श्रावकपना होता है, परन्तु इसके पहले यह बताते हैं। समझ में आया?

ऐसे (तीन पदवी को) प्राप्त हुए महामुनि हैं। तीनों होकर एक उपाय। **महा मुनियों की रीति लौकिक रीति से मिलती नहीं है।** उनकी रीति लोक के साथ, लोकरीति के साथ मिलान खाये, ऐसी नहीं, एक बात। **वही कहते हैं। 'अलौकिकी भवति'** है न? वृत्ति, उसकी व्याख्या करते हैं। **लोक पापक्रियाओं में आसक्त होकर प्रवर्तन करता है,...** सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मा की शुद्धदृष्टि होने पर भी, अभी उसे पापपरिणाम की आसक्ति एकदेश रही हुई है; जबकि मुनि को उस पापक्रिया की आसक्ति छूट गयी है। देखो! उनके समक्ष कहते हैं, **लोक, पापक्रियाओं में आसक्त होकर प्रवर्तन करता है, मुनि, पापक्रियाओं का चिन्तवन भी नहीं करते।** उन्हें पाप का विकल्प भी नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐसी इन मुनि की दशा होती है कि जो जंगल में बसते हैं, यह भी आयेगा। समझ में आया?

लोक अनेक प्रकार से शरीर को सँभाल रखते हैं.... एक बात, और **पोषण करता है....** ध्यान रखते हैं। आसक्त की वृत्ति है, इसलिए और उसके लिये जरा पोषण की वृत्ति भी उन्हें होती है। **मुनिराज अनेक प्रकार से शरीर को परीषह उत्पन्न करके...** पहला शरीर की संभाल रखता है, जबकि ये, परीषह अनेक प्रकार के हों, ऐसा अन्दर पुरुषार्थ करते हैं। नहीं समझ में आया? स्वरूप की ओर की जिन्हें इतनी उग्रता है कि बाहर की प्रतिकूलता के ढेर आवें, तो भी उनके सन्मुख जिनकी दृष्टि नहीं होती। इसीलिए कहते हैं कि परीषह को उपजाते हैं। ऐसा कहते हैं, उसका अर्थ। प्रतिकूलता

www.vitragvani.com

इतनी आ पड़े क्षुधा की, तृषा की, बाघ, भालू इत्यादि कि जो जंगल में बसते हैं। उन्हें बाहर के परीषह पड़े—ऐसी स्थिति में वे खड़े होते हैं-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाहर की प्रतिकूलता हो—ऐसी स्थिति में जाकर खड़े रहते हैं—ऐसा कहते हैं। उपजाते हैं का यह अर्थ है। और दूसरी बात—**सहन करते हैं।** कहा था न, सँभाल रखते हैं और पोषण करते हैं। जबकि यहाँ कहते हैं-परीषह उपजाते हैं और सहन करते हैं। ऐसे दोनों पारस्परिक लिया है। ऐसे गुलाँट खाकर बात की है। पाठ में है न? पाठ में शब्द (है); '**अलौकिकी भवति**' इसके सामने-लौकिक वृत्ति के सामने अलौकिक वृत्ति का मिलान करते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मुनिपना ही मोक्ष के लिये पहला उपाय है, यह पहले लेना। यह न ले सके तो उसे फिर श्रावक की वृत्तियाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित अंगीकार करना—ऐसा कहेंगे। समझ में आया?

परीषह सहन करते हैं। गृहस्थाश्रम में परीषह न उपजे और शरीर की सँभाल रखे तथा वृत्ति पोषण की हो, जरा शरीर को ठीक रहे ऐसा। जबकि मुनियों को परीषह जहाँ उपजे, ऐसी स्थिति में खड़े होते हैं, जाते हैं। उपवास करते हैं। देखो न! परीषह उपजाते हैं—इसका अर्थ। जंगल में जाते हैं, पर्वत पर खड़े रहते हैं, महा तेज धूप में ऐसे खड़े रहते हैं। सर्दी होवे तो तालाब के किनारे जाते हैं, तालाब के किनारे जाते हैं। सर्दी में किनारे जाते हैं, तालाब के किनारे जाते हैं। सर्दी में तालाब के किनारे बैठते हैं, नग्न होकर... मुनि तो नग्न ही होते हैं। मुनि की दूसरी दशा नहीं होती। समझ में आया?

परीषह उत्पन्न करके उन्हें सहन करते हैं। ऐसा कहते हैं वापस। उस समय वहाँ सहनशीलता से आनन्द में झूलते हुए उसे—परीषह को जीतते हैं। मुनि अतीन्द्रिय आनन्द की लहर करते हैं। ऐसी सर्दी पड़ने पर या गर्मी की ११८ डिग्री की धूप, और पर्वत पर जाते हुए राजकुमार आदि मुनि होते हैं या साधारण हो, अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द की घूँटें पीते हैं। अन्तर के निर्विकल्प समाधि के शान्ति के वीतराग समरस के प्याले पीते हैं। समझ में आया? उसे मुनिपने की चारित्र की दशा कहा जाता है। माँगीरामजी! ये उपजाते हैं और वापस सहते हैं। उपवास आदि अठ्ठम करे, जंगल में जाए, सर्दी में रहे। आनन्द और शान्ति से (वेदन करते हैं)। अतीन्द्रिय आनन्द में... तालाब में जैसे ठण्डे तालाब में पड़ने

www.vitragvani.com

से मनुष्य को सर्दी लगे, ऐसे भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की जो श्रद्धा हुई है, अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान हुआ है, उस अतीन्द्रिय आनन्द में जीव को डुबोते हैं, उस अतीन्द्रिय आनन्द में डुबकी मारते हैं। समझ में आया?

लोक को इन्द्रिय–विषय अत्यन्त मिष्ट लगते हैं.... पारस्परिक बात की है। अलौकिक वृत्ति। लौकिकवृत्ति के सामने अलौकिकवृत्ति। पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर के झुकाव का आसक्ति का राग उसे होता है। **मुनिराज विषयों को हलाहल विष समान जानते हैं।** भोग को रोग-समान जानकर, भोग का भाव उन्हें उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? एक बात यह की। दूसरी विशेष करते हैं। इसी-इसी की—अलौकिकवृत्ति की—ही व्याख्या है। पारस्परिक की।

लोक को अपने पास जन–समुदाय रुचिकर लगता है.... जहाँ-जहाँ मनुष्य हों, पुरुष हो, स्त्री हो, शिष्य, सभा हो तो इसे रुचता है। **मुनिराज दूसरों का संयोग होने पर खेद मानते हैं।** यह प्रतिमा पूछेगा और फिर जवाब देना है और.... यह सेठ आया है और यह राजा आया है और यह कुछ पूछेगा और फिर जवाब (देना)। यह कहाँ पंचायत (करनी)? कहो, समझ में आया?

कहते हैं लोगों को मनुष्य के समुदाय के संग में उन्हें ठीक लगता है, जबकि मुनि को दूसरे का संयोग भी होने पर, संयोग होने पर अर्थात् आ पड़ने पर, ऐसा। करना चाहते तो नहीं, परन्तु आ पड़ने पर उन्हें खेद वर्तता है। समझ में आया? देखो! यह चारित्र की अन्तरदशा। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-आनन्द के भानसहित, आत्मा की लहर में आत्मा अन्दर से उड़ते हुए उसे यह बाहर में रुचता नहीं। यह व्यक्ति ऐसा पूछेगा, यह आया, यह राजा आया, इसकी महिमारूप से इसे नहीं बुलावे—इसे नहीं कहे तो ठीक नहीं लगे। धर्मात्मा मुनि की दशा, लौकिक की अपेक्षा अलौकिक परिणति उनकी होती है। समझ में आया?

लोक को बस्ती सुहावनी लगती है.... बस्ती में रहना रुचता है, बस्ती में रहना रुचता है। ऐसा यहाँ लेना है। जहाँ मनुष्य बसते हों-रहते हों, वहाँ रुचता है। **मुनि को निर्जन स्थान ही प्रिय लगता है।** निर्जन—जन रहित। मुनियों की ऐसी दशा (होती है)। ऐसी दशा मुनि की होती है। समझ में आया? जैन के मुनि। इसके अतिरिक्त दूसरे तो मुनि

www.vitragvani.com

हो सकते नहीं। तीन उपाय का साथ में वर्णन करना है न? दर्शन-ज्ञान और चारित्र। मुनि को निर्जन स्थान रुचता है, एकान्त (होवे), कोई भूल से भी न हो, मनुष्य नहीं, एकान्त में अपना काम साधना अच्छा लगता है। समझ में आया? पहले को (लोक को) सभा एकत्रित हो, लोग एकत्रित हो—अधिक हो तो ठीक, ठीक, उसे उत्साह आता है। मुनि को उसका उत्साह नहीं आता; उन्हें खेद होता है। यह क्या? आत्मा के भानसहित की स्थिरता की रमणता में रमते सन्तों को दूसरे का संग भी अच्छा नहीं लगता; उन्हें बस्ती में रहना नहीं रुचता। आहाहा! 'मुम्बई' में साधु नहीं रहते। अभी तो है ही कहाँ? बात तो सब कठोर पड़ेगी, भाई! समझ में आया?

मुनिपना अर्थात् क्या? दुनिया ने मुनिपना सुना नहीं है। वीतराग—सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिसे मुनिपना कहते हैं, वह दशा कैसी होती है, यह लोगों ने सुना नहीं है। आहा! ऐ...ई! माँगीरामजी! श्रीमद् में नहीं आता?

एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥

ऐसी भावना, सन्तों को अन्तर में रमणता जग गयी है न! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उपरान्त चारित्र के स्वरूप की रमणता की बलवान दशा जागृत हो गयी है। जिन्हें सिंह का योग होवे तो भी जिनके मन में कम्पन नहीं है, आसन चलित नहीं होता, मन चलता नहीं। निर्जन वन में... सन्त तो वन में ही रहते थे.... नग्न मुनि होते हैं। वे वीतरागी मुनि नग्न होते हैं। समझ में आया? ये वस्त्र-पात्र और जो ये (रखते हैं), वे तो बाद में कल्पना से बनाकर ठहराया है। यह वीतराग में मार्ग की पद्धति नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि निर्जन स्थान अच्छा लगता है, जंगल में अकेले (रहते हैं)। बहुत आमदनी होती हो न व्यापारी को, और घर के लोगों को भी सूचना न देनी हो तो रात्रि में भाई इकट्ठे होकर पैसे गिनते हैं। समझ में आया? आमदनी बहुत होती हो और आमदनी का आँकड़ा लड़कों को या महिलाओं को भी ख्याल में न देना हो तो वे भाई होते हैं न, दो-

www.vitragvani.com

तीन व्यक्ति, वे इकट्ठे होकर रात्रि में उठकर बारह बजे और तीन बजे आँकड़े (रुपये) गिनते हैं। ऐसा हुआ है, हों! कारण कि महिलाओं को खबर करे तो कहेगी अपने ऐसी तीन लाख की आमदनी बारह महीने में है, पाँच लाख की आमदनी है। महिलायें पचा नहीं सकती। घर की बहू को पता न पड़ने दे। ऐ... न्यालभाई! यह तो एक व्यक्ति कहता था, हों! महाराज! हमारे थे वे रात्रि में तीन इकट्ठे होकर पैसे गिने, हमें पता भी नहीं पड़ने दे। महिलाओं को पता नहीं, लड़कों को पता नहीं पड़ने दे।

मुमुक्षु : उसे पता कैसे पड़ा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे यह... करते थे—ऐसे पता पड़ा। रात्रि को उठते थे और अकेले बैठते थे और कोई नहीं था—ऐसे पता पड़ा। शान्तिभाई!

ये (मुनि) आत्मा की लहर करने, अब आत्मा की अन्दर कमाई करने एकान्त में बैठे, इन्हें बाहर की जरूरत नहीं पड़ती। निर्जन वन में अकेले स्वयं अन्दर आत्मा में लहर (मौज) करते हैं—ऐसा कहते हैं। आहा...! समझ में आया? आहा...! ये तुम्हारे शिष्य, ऐसा कहते उन्हें शर्म लगे। अरे! हमारे शिष्य? हमारे दूसरा द्रव्य क्या? समझ में आया? पहले को ऐसा कहे—तुम्हारे इतने लड़के हैं और वह प्रसन्न होता है। पहले को कहे तुम्हारे शिष्य है तो वह प्रसन्न होता है। हमारे शिष्य! बापू! आत्मा को शिष्य क्या? और आत्मा को दूसरी चीज़ क्या? आहा...! समझ में आया? ऐसी अलौकिक वृत्ति के धारक को यहाँ जैनदर्शन में साधुपद कहने में आता है।

कहाँ तक कहें? 'टोडरमलजी' ने इसका अलौकिक वृत्ति में से लौकिक के साथ ऐसे गुलाँट खाकर मिलान किया है। जो शास्त्र की पद्धति है न? अस्ति कहना हो तो नास्ति से (कहे) और नास्ति कहना हो तो अस्ति से (कहे)। यह 'अमृतचन्द्राचार्य' की पद्धति है, वह इन टोडरमलजी ने पकड़ी है। आहा...! **महामुनिश्वरों की रीति लौकिक रीति से विरुद्ध होती है।** वे (गृहस्थ) स्नान करें तो ये (मुनि) स्नान नहीं करते; वे निश्चिन्त रात्रि को सोवे, जबकि ये पूरी रात जगें। पिछली रात्रि में एक पिछली पहर में जरा-सा, थोड़ा-सा भाग पिछले पहर में थोड़ा-सा... एक ही करवट से, हों! एक ओर के करवट से, बस! थोड़ी-सी... लौकिक प्रवृत्ति से मुनि की (क्रिया) अत्यन्त ही उल्टी ही सब है। समझ में आया? मुनियों को दो घण्टे की नींद नहीं होती। समझ में आया?

www.vitragvani.com

मुनिदशा अर्थात् कि ऐसे छठवें-सातवें गुणस्थान में झूले। क्षण में अप्रमत्त के आनन्द का स्वाद लेकर उग्ररूप से वेदते हैं। क्षण में कोई विकल्प ऐसे स्वाध्याय करूँ या... नींद भी उन्हें एक घण्टे की एक नींद लगातार नहीं होती। एक घण्टे की लगातार नींद होवे तो उन्हें मुनिपना नहीं रहता। न्यालभाई! उन्हें तो.. आहाहा! तन्दुरुस्त-तन दुरस्त होवे तो... आत्मा के अतीन्द्रिय के स्वाद के समक्ष, उन्हें शरीर में क्या है, इसका पता भी नहीं पड़ता किसी समय। ऐसी जिनकी दशा अन्दर होती है। समझ में आया?

चारित्र अर्थात् क्या? आहाहा! जिस चारित्रवन्त को त्रिलोक के नाथ तीर्थंकर के गणधर जिन्हें नमस्कार करें! धर्मराजा सर्वज्ञ परमेश्वर धर्मपिता, उनके गणधर पुत्र; जिन्हें चार ज्ञान (है और) अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्व की रचना करने की सामर्थ्य है—ऐसे सन्त-भगवान के पुत्र-गणधर को सर्वज्ञ पुत्र कहने में आता है। वे भी ऐसे मुनि, यह दशा जिन्हें आयी हो, उन्हें ऐसा कहते हैं नमस्कार... नमस्कार... नमस्कार...! मेरे तुम्हारे चरणकमल में नमस्कार! ऐसे मुनिपद को नमस्कार होता है, बापू! यह मुनिपद सुना नहीं है; होवे तो कहाँ परन्तु सुना नहीं है (कि मुनि) कैसे होते हैं! मोहनभाई! समझ में आया? माँगीरामजी!

महा सन्तों! देखो! चारित्र ऐसा होता है—ऐसी इसे श्रद्धा कराते हैं। सम्यग्दर्शन में यह आ जाता है कि पुण्य-पाप के परिणाम रहित की जो चारित्रदशा—संवर—ऐसा होता है। ऐसी उसकी प्रतीति में आ जाता है, ज्ञान में आ जाता है, परन्तु स्थिरता में आये हों, वे जीव कैसे होते हैं—उसका यहाँ वर्णन करते हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को प्रतीति में आया है कि यह आत्मा शुद्ध आनन्द है, इसमें पुण्य का विकल्प जो व्रत आदि उत्पन्न होते हैं, वे भी नहीं और उस स्वरूप में अत्यन्त वीतरागी पर्यायरूप से स्थिर हो तो चारित्र कहलाता है—ऐसा इसे प्रतीति में आ गया है। संवर और निर्जरा की प्रतीति करते हुए उसमें यह प्रतीति आ गयी है। समझ में आया? और मुनि को इतनी अधिक शान्ति—आत्मा के आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन—इतना अधिक आनन्द का वेदन होता है कि जिसके समक्ष उन्हें दुनिया के परीषह का ख्याल भी नहीं रहता। समझ में आया? इस दुनिया से मुनियों की पद्धति ही अत्यन्त उलटी है। लौकिक वृत्ति से अलौकिक वृत्ति अलग है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कैसी है मुनियों की प्रवृत्ति? 'करम्बिताचार नित्यनिरभिमुखा' – पापक्रिया

www.vitragvani.com

सहित आचार से पराङ्मुख है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान तो है परन्तु हिंसा के और झूठ आदि के जो परिणाम हैं, वे जिन्हें सर्वथा छूट गये हैं। पापक्रिया सहित के अन्दर पाप के परिणाम, हों! आचार से परान्मुख है, वह तो नास्ति से बात की है। इसकी अस्ति करेंगे। **जिस प्रकार श्रावक का आचार पापक्रिया से मिश्रित है....** देखो! इसके साथ मिलाते हैं। समकिती श्रावक सच्चा हो, उसे आत्मा शुद्ध चैतन्य निर्मलानन्द है, पुण्य-पाप के रागरहित मेरा स्वरूप है—ऐसा भान हुआ होता है, ऐसी श्रद्धा भी अन्दर हुई होती है, परन्तु उसे—श्रावक को—आंशिक त्याग वर्तता है; इससे उसे पापमिश्रित परिणाम होते हैं। पापक्रिया से मिश्रित परिणाम श्रावक को पंचम गुणस्थान में, आत्मज्ञान-दर्शनसहित होने पर भी, उसे सर्वथा पाप की विरति नहीं होती।

वैसे मुनीश्वरों के आचार में पाप का मिश्रण नहीं है। समझ में आया? अत्यन्त निर्विकल्प आनन्द में झूलते हैं। उन्हें सर्वविरतिपना है—पाप से बिलकुल / सर्वथा छूट गये हैं। आहाहा! अथवा '**करम्बित**' की व्याख्या करते हैं। '**करम्बित**' **अर्थात् कर्मजनितभाव मिश्रित आचरण....** अर्थात् राग है न पुण्य का या पाप का, उसके मिश्रित जो आचरण, उससे वे मुनि परांमुख हैं। पहला परांमुख कहा था न, उसकी विशेष व्याख्या करते हैं। अब उसके सामने अस्ति कहते हैं।

केवल निजस्वरूप का अनुभव करते हैं.... एक केवल, केवल आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप तो दृष्टि में, सम्यग्दर्शन में आया, हुआ तब से आया। सम्यग्ज्ञान हुआ, तब से अतीन्द्रिय, यह आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द का ही अकेला पिटारा आत्मा है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को, अकेले निजस्वरूप को, आनन्द को ही अनुभव करता है। विकल्प-पुण्य का भी जिसे अनुभव में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

पापक्रिया से परांमुख है, यह तो नास्ति से बात की। वहाँ अस्ति क्या वर्तती है? अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार—पिटारा प्रभु है, उसे सम्यग्दर्शन में प्रतीति तो आयी कि आनन्द यहाँ है। पुण्य-पाप के भाव में भी आनन्द नहीं, पुण्य-पाप का बन्धन हो, उसमें आनन्द नहीं और उसके फल की यह धूल मिले, उसमें यह आनन्द नहीं—ऐसी तो प्रतीति पहले हो गयी है। बाबूभाई!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु :.....

उत्तर : कुछ नहीं आता। धूल भी उपयोग में नहीं आता। क्या आता है? घर कहाँ इसके बाप का था? वह तो धूल का ढेर खड़ा होता है। पुद्गल का ढ़ेर खड़ा होता है। सम्यग्दृष्टि, यह ढेर मेरा है—ऐसा अन्तर में मानता ही नहीं। उसे यदि मेरा माने तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? कथंचित् कैसा फिर?

भगवान आत्मा—शुद्धात्मा में पुण्य-पाप के विकल्प मेरे हैं—ऐसा माने तो वह मिथ्यादृष्टि है; वह जैन नहीं, उसे समकित नहीं। कहो! पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे मेरे हैं—ऐसा मानता नहीं। वह तो विकार है। विकार मेरा होगा? मैं तो निर्मलानन्द हूँ। बाबूभाई! बहुत सूक्ष्म बात है। उसमें किसी दिन सुनने जाए, उसमें व्यवस्थित न आवे। पूछा था तो कहा, किसी दिन जाता हूँ। उसका सब ढीला सब। कहा, रविवार को। रविवार को सदा जाते हो तो व्यवस्थित कहलाये। ऐसा नहीं था। कहो, समझ में आया इसमें? बाबूभाई! यह तो बापू! परिचय करे तो समझ में आये ऐसा है। अभी बाड़ा (सम्प्रदाय) चलते हैं, उनमें यह बात है ही नहीं। न्यालभाई! यह तुम्हारे बापू सबसे फिर कर आये हैं, हों! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, सम्यग्दृष्टि (हों), तथापि गृहस्थाश्रम में भी... यह तो आ गया। १५ वीं गाथा में नहीं आया? देखों! **कर्मजनित पर्याय को आत्मरूप से-अपनेरूप जानने का नाम ही विपरीत श्रद्धान है....** १५ वीं गाथा का भावार्थ। ये सब पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध के परिणाम—यह तो कर्मजन्य उपाधि का भाव है। उसे आत्मा मानने का नाम मिथ्यादर्शन, अज्ञान है। आहाहा! तो फिर उससे मुझे पुण्य बँधेगा, शुभभाव मेरा, मुझे पुण्य बँधता है न, तो उससे मुझे सुविधाएँ मिलेगी। ये सब भगवान के पास... सब सुविधा मेरी है और मुझे होती है (-यह) मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? वह मान्यता गयी है, यहाँ तो कहते हैं। सम्यग्दर्शन होते ही वह श्रद्धा टलकर नष्ट हो गयी है, परन्तु अभी अन्दर जो थोड़ी आसक्ति रही है, वह आसक्ति मेरी है—ऐसा अन्दर नहीं, परन्तु आसक्ति रही है, इसलिए उसे चारित्र नहीं है। उस आसक्ति की अस्थिरता, स्वरूप की लीनता द्वारा आंशिक टले, उसे श्रावक कहते हैं और विशेष पूरी

www.vitragvani.com

टले, उसे मुनि कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! समकिती को छह खण्ड के राज होते हैं। नहीं, मुझे तो नहीं, मेरे नहीं; मेरा है, वह अलग हो नहीं और अलग हो, वह मेरा हो नहीं।

मुमुक्षु : उसे भोगता है और मेरा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भोगता, भोगता ही नहीं। कौन कहता है भोगता है ? स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि स्वभाव को स्पर्शित है, उसे भले आसक्ति होती है, परन्तु वह वास्तव में पर को स्पर्श नहीं करता; दृष्टि की अपेक्षा से तो आसक्ति को स्पर्श नहीं करता। समझ में आया ? ऐसी दृष्टि और ज्ञानपूर्वक दशा में चारित्र की दशा कहते हैं। **केवल निज स्वरूप का अनुभव करते हैं।** इसमें तो व्रत पालता है, अमुक करता है– यह आया नहीं। यह तो बीच में विकल्प, उससे बाहर भिन्न होकर (स्वरूप में) स्थिर होता है, इसका नाम निश्चयव्रत है। समझ में आया ?

अलौकिकी वृत्ति की व्याख्या चलती है। वह लोकोत्तरदशा है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का पाक पका है। आहा ! भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त आनन्द के पाक का खेत है। उसमें अन्तर भान होने के पश्चात् स्वरूप लीनता में खेती करता है (तो) अतीन्द्रिय आनन्द का उफान ज्ञानी को आता है, उसे चारित्र कहने में आता है। समझ में आया ? लोगों को कठिन लगता है। अरे... ! हम मुनि हैं और हमें मुनि नहीं कहते, हमें मुनि नहीं कहते। परन्तु मुनि होवे नहीं और मुनि माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे तो ऐसा है, हमें मानते नहीं... परन्तु बापू ! यह प्रश्न ही तुझे किसका उठता है ? मुनि होवे उसे तो अपने आनन्द का सन्तोष है, उसे दुनिया की पड़ी ही नहीं है, दुनिया कौन वन्दन करता है, कौन आदर करता है, इसकी पड़ी नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?... परन्तु उसे यह पड़ी किसकी हो ? दूसरा वन्दन कौन करता है, कौन नहीं करता—परन्तु तुझे विकल्प का क्या काम है ? तू तुझे आदर—बस पूरा हो गया, दूसरे का काम क्या है तुझे ? समझ में आया ? किसे बुरा लगता है ? क्या है ? परन्तु बुरा अर्थात् क्या ? वह तो उसे नहीं आदर करने का भाव, वह तो उसके कारण से नुकसान है, उसमें तुझे क्या है ? समझे ? यह नुकसान क्या है ? समझ में आया ?

मुनि की वृत्ति निज स्वरूप... चारित्र लेना है न ? सम्यग्दृष्टि को निज स्वरूप की

www.vitragvani.com

दृष्टि हुई, निज स्वरूप का ज्ञान हुआ, परन्तु निजस्वरूप की स्थिरता का अनुभव उग्ररूप से नहीं है, उग्रपने नहीं है। यहाँ चारित्र की व्याख्या करनी है। मुनि को तो उग्ररूप से आनन्द की मौज, मजा लेते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते हैं। आहाहा! समझ में आया?

दूधपाक खाया गया हो और फिर उस कड़ाही में चिपका हो और फिर कलछी से उखेड़कर लड़के खाते हैं। उन्हें बहुत मीठा लगता है। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा में आनन्द ऐसे चिपका हुआ है, उसमें यहाँ आत्मा अन्दर में एकाकार चिपट जाता है। आत्मद्रव्य है न? द्रव्य है। आनन्द है, वह गुण है। वह गुण चिपटा हुआ है अर्थात् आत्मा के साथ एकाकार हुआ है। उसकी दृष्टि और ज्ञान तो हुआ है, अब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में आनन्द थोड़ा तो आया था; सम्यक्चारित्र में तो अन्दर से अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आता है, जिसके समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन भी तिनका, तृण, छिलका, सड़ा हुआ कचरा (लगता है)। यद्यपि सम्यग्दृष्टि को ऐसा है।

आत्मा का भान होने पर, सम्यक् अनुभव होने पर, इन्द्र का इन्द्रासन सड़ा हुआ तृण, सड़ा हुआ कचरा लगता है। सड़ा हुआ कचरा, हों! उकरड़ा समझते हो? ढेर, कूड़े का ढेर। हमारे काठियावाड़ में उकरड़ो भाषा है। समझ में आया? आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसे कर्मजनित पुण्य-पाप के विकल्पों से पार अन्तरदृष्टि पड़ने पर पूरी दुनिया का वैभव सड़े हुए (कचरे जैसा लगता है)। यहाँ तो वहाँ तक नहीं कहा? 'चक्रवती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग, काग बीट सम मानत है, सम्यग्दृष्टि लोक।' क्या कहा? चक्रवर्ती की सम्पदा! सोलह हजार देव सेवा करें, छियानवें हजार रानियाँ अप्सरा जैसी और ऐसी-ऐसी उसे लड़कियाँ, दामाद, नव निधान...यह सम्पदा और 'इन्द्र सरीखा भोग, कागबीट सम मानत है' शान्तिभाई! उस कौए की विष्ठा समान सम्यग्दृष्टि उसे मानता है। आहाहा! कौए की विष्ठा। कुत्ते की विष्ठा तो जरा कहीं काम भी आवे। वैद्य प्रयोग करे, नाम न रखे, दवा करे। समझ में आया? ऐसे कौए की विष्ठा। 'चक्रवती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागबीट सम मानत है, सम्यग्दृष्टि लोक।' आहाहा! विष्ठा कहा तो चिल्लाने लग जाए। सम्यग्दृष्टि, अरे! बापू! यह वैभव अर्थात् क्या? ज़हर का ढेर। कर्म के प्रकार बँधा हुआ यह सब ज़हर का वृक्ष। यह पुण्य बँधा हुआ हो न, वह ज़हर का वृक्ष है, उसमें से

www.vitragvani.com

ज़हर पकेगा; उसमें कहीं आत्मा नहीं पकेगा। आहाहा! समझ में आया? धूल का ढेर, वह तो ज़हर का (वृक्ष है)। उसमें आत्मा को क्या?

मुमुक्षु : काम आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम किसमें आवे? राग के लिये काम आवे, ममता के लिये। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि सम्यक्-आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है—ऐसी सम्यग्दृष्टि होने पर गृहस्थाश्रम में छह खण्ड के राज्य में चक्रवर्ती पड़ा उसे कौवे की विष्टा समान उस पदवी को जानता है। बाबूभाई! वह वापस ऐसा कहे, मेरे थोड़ी आमदनी और उसे ज्यादा आमदनी, मेरे दो लाख की आमदनी, उसे दस लाख की बारह महीने में आमदनी। होली है न परन्तु क्या है तुझे? शान्तिभाई! प्रतिस्पर्धा यह सब होली की चलती है, यह तो चलती है।

धर्मी, जिसे आत्मा की श्रद्धा हुई है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर / समुद्र है, उसमें राग की गन्ध नहीं, ऐसी वह चीज़ है। पुण्य के परिणाम की गन्ध नहीं—ऐसे आनन्द की गन्ध से भरपूर है। आहाहा! ऐसी जिसे अन्तर में, अनुभव में प्रतीति-श्रद्धा हुई, उसे इस जगत् के चक्रवर्ती के राज भी कौवे के विष्टा जैसे लगते हैं। मक्खन जैसा शरीर, इन्द्राणियाँ ज़हर जैसी लगती है। विष्टा.... विष्टा.... कौवे की विष्टा... आहाहा! समझ में आया? दोनों उत्कृष्ट बात ली है। चक्रवर्ती की सम्पत्ति, इन्द्र सरीखे भोग। देव में इन्द्र और यहाँ चक्रवर्ती। आहाहा! स्वयं को जरा शुभभाव आवे उसे भी हितकर नहीं मानता, उसे भी ज़हर मानता है। नये शुभभाव हों, उन्हें समकिती ज़हर मानता है तो उसका बन्धन और उसका फल उसे कैसे अच्छा मानेगा? आहाहा! समझ में आया?

इसलिए.... अब वह शब्द आया **'एकान्तविरति' 'एकान्तविरतिरूपा'**। तीसरी लाईन **'एकान्तविरतिरूपा' अर्थात् सर्वथा पापक्रिया के त्यागी हैं....** सम्यग्दृष्टि को तो अभी राग होता है, तथापि राग को हितकर नहीं मानता। मुनि को राग नहीं होता, यहाँ तो ऐसा कहना चाहते हैं। सर्वथा विरतिरूप-बिल्कुल पाप की निवृत्ति। अकेली पाप की निवृत्ति ऐसा नहीं लिया। **एक निजस्वभाव के अनुभव से....** ऐसे अस्ति से वापस बात ली है। पाप की निवृत्ति हुई है परन्तु यहाँ आनन्द में प्रवृत्ति हुई है।

www.vitragvani.com

एक निजस्वभाव के अनुभव से.... भगवान आत्मा के स्वाद से... जिसे एक घी में सराबोर मिठाई खाता हो, उसे कोई यह ज्वार के, लाल ज्वार के छिलके की रोटियाँ दे तो उसे कूँचा लगता है। लाल ज्वार के, हों! सफेद ज्वार के छिलकों में कस होता है, लाल ज्वार के छिलकों में कस नहीं होता। यह तो हमारे अनुभव भी हुआ होता है न! लाल ज्वार की रोटियाँ आयी थी (संवत्) १९७६ की बात है, हों! ७६, एक बार 'विरमगाँव' गये थे तब। मैं और जीवणलाल दो थे। उसका स्वाद नहीं होता, उसके छिलके की तो बात ही क्या करना? संवत् १९७६ में गये थे, बहुत वर्ष हो गये। तब बढ़वाण में नहीं वे वृद्ध आये थे, मोरबीवाले विट्ठलगढ़, विरमगाँव के पास है न। १९७६ में संघ किया था, तुम्हें याद नहीं। १९७६ में मणीलाल डोसाभाई काँप में आये थे, १९७६ की बात है, बहुत वर्ष हो गये, सैंतालीस वर्ष हो गये... उतरे थे।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! भाई! जिसे आत्मा का धर्म स्वभाव है, वह प्रतीति में, ज्ञान में आया; उसके स्वभाव के समक्ष दुनिया के विभाव और विभाव के फल तो उसे तुच्छ लगते हैं। यहाँ तो धर्मात्मा मुनि है, उनकी तो क्या बात करना! कहते हैं। उन्हें तो **एक निजस्वभाव के अनुभव से....** आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर जहाँ अन्दर में उछलता है, वस्तु, वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से भरपूर परिपूर्ण सागर आत्मा है, उसकी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और लीनता द्वारा, जो अनुभव द्वारा आनन्द वर्तता है, उसे **परद्रव्यों से उदासीन स्वरूप हैं।** इसलिए वह **सर्वथा परद्रव्यों से उदासीन स्वरूप हैं।** इस द्वारा उदासीन है, ऐसे दो अस्ति की। निजस्वरूप के अनुभव द्वारा, आनन्द की मस्त लहर के समक्ष सर्व परद्रव्यों से जिसे अन्तर में मुनिदशा को उदास... उदास... उदास है। समझ में आया?

रत्नत्रय के धारक महामुनियों की ऐसी ही प्रवृत्ति होती है। यह क्या व्याख्या कही? यह ऊपर सोलह (गाथा का) शीर्षक था। **जो इस उपाय में लगते हैं, उनका वर्णन आगे करते हैं।** पन्द्रहवीं में तीन उपाय बतलाये थे-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। इस उपाय में लगता है, उसका यहाँ वर्णन किया है। इस उपाय में परिणम रहे हैं, उनका क्या स्वरूप है?—ऐसा वर्णन किया। समझ में आया?

www.vitragvani.com

जैन अर्थात् जैन होना, वह कहीं बाड़ा में जन्मा; इसलिए जैन नहीं है। जैन एक भिखारी में जन्मा हो, चाण्डाल में जन्मा हुआ हो... समझ में आया? परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह चाण्डाल हो तो भी देव को पूजनीय है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आया है। राख से दबी हुई अग्नि। शरीर देखो तो काला कूबड़ा हो, हरिजन का अवतार हो... समझ में आया? परन्तु अन्तर में आत्मा का भान है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है; चारित्र भले न हो, अन्तर में आनन्दस्वरूप का भान और वेदन है—ऐसा वह चाण्डाल, उसका-चाण्डाल का एक बालक आठ वर्ष का हो, काला-कूबड़ा, नाक झर गयी हो, आँख-कान टूट गये हों, रोटियाँ भी मुश्किल से मिलती हों परन्तु वह आनन्द मानता है। बाबूभाई! आहाहा! देव उसकी सेवा करते हैं। आहाहा! धन्य-धन्य तेरी बात है! आता है या नहीं छहढाला में? 'लेश न संयम पै सुरनाथ जजै हैं' आता है। छहढाला में आता है। सम्यग्दृष्टि जीव को संयम भले न हो, चारित्र भले न हो परन्तु ऐसा भान है, इसलिए इन्द्र भी पूजता है। यह छहढाला में आता है। 'लेश न संयम....' सब कण्ठस्थ थोड़े ही होता है? कहो, समझ में आया? आहाहा!

चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज्य, उसमें पड़ा परन्तु जिसे राग वह मैं हूँ—ऐसी मान्यता है, वह भिखारी में भिखारी है, वह रंक है; दूसरा चाण्डाल के घर में अवतरित, काला शरीर, बोलने में ऐ...ऐ... भाषा हो, वे तो जड़ की क्रियायें हैं। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के राग से रहित का अन्तरभान हुआ है, कहते हैं वह बादशाह है। अन्तर के अनन्त स्वरूप की लक्ष्मी का स्वामी हो गया है। आहा! कहो, समझ में आया? और इसे छह खण्ड का राज्य होने पर भी भिखारी... भिखारी... भिखारी... है।

अपने सेठिया ने लिखा नहीं? आया है या नहीं तुम्हारे वह? वह पुस्तक आयी है या नहीं? बाबूभाई! बाबूभाई किसी दिन निवृत्त होते हों इसलिए न आयी हो। सरदारशहर के सेठिया हैं, वे लिखते हैं, देखो! नहीं आया? परन्तु वह तो निवृत्त हो तब आवे न। निकालो, पृष्ठ निकालकर बताना चाहिए न! पृष्ठ १३, दूसरी लाईन है, देखो! 'गुणीजन संभाल करि सके अन्य तो अनुचर जाणजो जी, मारा ज्ञान' यह तब बनाया था, जब उनके लड़के का लड़का ढाई वर्ष का मर गया। सरदारशहर के सेठिया ने। जिन्हें चालीस वर्ष

www.vitragvani.com

पहले साठ लाख रुपये उनके मामा के पास थे। साठ लाख उन्हें देते थे परन्तु नहीं लिये। क्या करना है ? चालीस वर्ष पहले के साठ लाख, हों! बाबूभाई! अभी का तुम्हारा रुपया ढाई आने और तीन आने हो गया है। फिर लड़का मर गया ढाई वर्ष का, बड़ा घर है, गृहस्थ व्यक्ति है, अभी पाँच-सात लाख रुपये हैं, बड़ी इज्जत है। लड़का मर गया, इसलिए लोग आने लगे। लड़के की बहू को कहा, क्यों लड़की ? लड़की ही कहे न ससुराल में लड़के की बहू को! अरे! बापू! अपने घर में रोना हो! लड़के का मुर्दा पड़ा है ढाई वर्ष का, (तब) यह गायन बनाया। अपने रोते हैं न बापू!? मेरा पेट नहीं कहते ? मेरा पेट, मेरा पेट रोते हैं न ? उसके बदले मेरा ज्ञान रचा है। हिन्दुस्तान में भी यह भाषा है वहाँ। अपने महिलाएँ नहीं रोतीं ? यह लड़का मर जाये, लड़की मर जाये (तब) मेरा पेट—ऐसा बोलते हैं न अन्तिम ? अन्तिम सारांश। ऐसे यह कहते हैं, देखो!

'गुणीजन संभाल करि सके' इस आत्मा के अनन्त आनन्द को सम्हाले वह सेठ है। ऐ...शान्तिभाई! 'अन्य तो अनुचर...' अनुचर अर्थात् भिखारी। 'जान जो जी म्हारा ज्ञान' अन्य हमारा पेट कहते हैं, उसके बदले हमारा ज्ञान रचा है। यह तेरहवाँ गायन है इसमें पूरा। यह तो एक लाईन बोलते हैं, हों! 'अन्य तो अनुचर जाण जो जी म्हारा ज्ञान' म्हारा ज्ञान अर्थात् मैं तो ज्ञानमूर्ति हूँ। मेरा तो ज्ञान है, मेरा लड़का कैसा, शरीर कैसा, और राग कैसा ? आहाहा! बाबूभाई! है न ? 'गुणीजन दुःख-सुख करे छे जी राज, आतमसुख जीतियो जी, म्हारा ज्ञान' मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ, मुझमें आनन्द है, मुझे दुःख है ही कहाँ ? ए... शान्तिभाई! 'गुणीजन अन्तः प्रभु पद ध्याय सिद्धसपद पामश्या जी' वह लड़का पड़ा है, मुर्दा ढाई वर्ष का, हों! आँख में आँसू नहीं, आँख गीली नहीं। इसमें रोया जाता है ? यह तो आये और जाये, चला करता है। समझ में आया ? गुणीजन अन्ततत्त्व प्रभु पद ध्याय। ये महिलायें सब यह गाये। 'सिद्ध सपद पामश्यां जी म्हारा ज्ञान' मैं तो ज्ञानमूर्ति हूँ। मैं तो अल्पकाल में सिद्धपद को पानेवाला हूँ। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, ऐसे ये रत्नत्रय धारक महासन्त सम्यग्दृष्टि भी जहाँ बाहर की सम्पत्ति को कौवे की विष्ठा जैसी मानते हैं, उसे पर में उत्साह नहीं तो मुनिपद का क्या कहें! वे तो चारित्र के अनुभव में रमते हैं। ऐसे मुनिपद को चारित्र को तीन उपाय में लगे हुए कहने में आते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)